• कविताएं...

वो और उसकी कविता...

बेचारी औरत का दर्द
दुनिया के सामने रखने की
खातिर
एक कविता लिखनी थी
अपनी तसव्वुर से
सहूलियत के मुताबिक
करीने से बनाई
बेचारी औरत की तस्वीर
एक जबरदस्त कविता बनी
और मेरी ओर देखते हुए
मुस्कराने लगी।

रिजेक्टेड माल...

कहीं कोई कमी रह गई थी
सादी आंखों से पकड़ में भी नहीं
आने वाली
लेकिन वो
एक्सपोर्ट के काबिल नहीं रह
गया
साहबों के चमचमाते शोकेस के
बदले
उसे जगह मिली फुटपाथ पर
अचानक वो
लगभग हर किसी की पहुंच के
अंदर आ गया
बेचने वाले शातिर थे
खरीदने वाले भी शातिर
दोनों एक-दूसरे को बेवकूफ
बना रहे थे
वो उनके धंधे का हिस्सा बन
गया
दोनों को पता था
वो रिजेक्टेड है
लेकिन है बेशक काम का
बेशक वो काम का है
और रहेगा
अगर पतलून नहीं
तो फिर झोला बनकर।

-उज्ज्वल भट्टाचार्य

• कहानी/–विष्णु प्रभाकर...

मेरा वतन...

गतांक से आगे...

उस अर्द्ध-विक्षिप्त पुरुष ने थकी हुई आवांज में जवाब दिया, मैं अमृतसर चला गया था।

क्या, दुकानदार ने आंखें फाड़कर कहा, अमृतसर!

हां, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा वतन है।

दुकानदार की आंखें क्रोध से चमक उठीं, बोला, मैं जानता हूं। अमृतसर में साढ़े तीन लाख मुसलमान रहते थे, पर आज एक भी नहीं है।

हां, उसने कहा, वहां आज एक भी मुसलमान नहीं है।

काफिरों ने सबको भगा दिया, पर हमने भी कसर नहीं छोड़ी। आज लाहौर में एक भी हिन्दू या सिक्ख नहीं है और कभी होगा भी नहीं।

वह हंसा, उसकी आंखें चमकने लगीं। उसमें एक ऐसा रंग भर उठा जो बे-रंग था और वह हंसता चला गया, हंसता चला गया... वतन, धरती, मोहब्बत सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं... सबसे बड़ा मजहब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बन्दा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वह मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।

दुकानदार ने धीरे से अपने दूसरे साथी से कहा, आदमी जब होश खो बैठता है, तो कितनी सच्ची बात कहता है।

साथी ने जवाब दिया, जनाब! तब उसकी जबान से खुदा बोलता है।

बेशक,उसने कहा और मुड़कर उस अर्द्ध-विक्षिप्त से बोला-शेख साहब! आपको घर मिला?

सब मेरे ही घर हैं।

दुकानदार मुस्कराया, लेकिन शेख साहब! जरा बैठिए तो, अमृतसर में किसी ने आपको पहचाना नहीं।

वह ठहाका मारकर हंसा, तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूं।

सच।

हां, उसने आंखें मटकाकर कहा।

तुम जीवट के आदमी हो।

और तब दुकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कवाब मंगाकर दिए। लापरवाही से उन्हें पल्ले में बांधकर और एक टुकड़े को चबाता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दुकानदार ने कहा, अजीब आदमी है। किसी दिन लखपती था, आज फाकामस्त है।

खुदा अपने बन्दों का खूब इम्तहान लेता है।

जन्नत ऐसे को ही मिलता है।

जी हां। हिम्मत भी खूब है। जान-बूझकर आग में जा कूदा।

वतन की याद ऐसी ही होती है। उसके साथी ने जो दिल्ली का रहने वाला था कहा, अब भी जब मुझे दिल्ली की याद आती है तो दिल भर आता है।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी। बैल अपनी डगर को पहचानते हैं। उसके पैर भी दृढ़ता से रास्ते पर बढ़ रहे थे और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी।

उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली, फिर बुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अन्दर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका। वह लॉ कॉलिज के सामने निकल आया...

उतने कष्ट की कल्पना करना जो दूसरे ने भोगा है असम्भव जैसा है, फिर भी यातना की समानता के कारण दो मित्र व्यक्तियों की संवेदना एक बिन्दु पर आकर एक हो जाती है।

वह आगे बढ़ रहा था। माल पर भीड़ बढ़ रही थी। कारें भी कम नहीं थीं। अंग्रेज, एंग्लो-इंडियन तथा ईसाई नारियां पहले की तरह ही बांजार में देखी जा सकती थीं। फिर भी उसे लगा कि वह माल जो उसने देखी थी यह नहीं है। शरीर अवश्य कुछ वैसा ही है, पर उसकी आत्मा वह नहीं है। लेकिन यह भी उसकी दृष्टि का दोष था। कम-से-कम वे जो वहां घूम रहे थे उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं था।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी। बैल अपनी डगर को पहचानते हैं। उसके पैर भी दृढ़ता से रास्ते पर बढ़ रहे थे और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी। उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली, फिर बुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अन्दर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका। वह लॉ कॉलिज के सामने निकल आया। उसी क्षण उसका दिल एक गहरी हूक से टीसने लगा। कभी वह इस कॉलेज में पढ़ा करता था...

वह कांपा, उसे याद आया, उसने इस कॉलेज में पढ़ाया भी है...

वह फिर कांपा। हूक फिर उठी। उसकी आंखें भर आयीं। उसने मुंह फेर लिया। उसके सामने अब वह रास्ता था जो उसे दयानन्द कॉलेज ले जा सकता था। एक दिन पंजाब विश्वविद्यालय, दयानन्द विश्वविद्यालय कहलाता था।

तभी एक भीड़ उसके पास से निकल आयी। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे। बे-घर और बे-जर लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कड़वा हो आया। उसने चीख-चीखकर उन्हें गालियाँ देनी चाहीं। तभी पास से जानेवाले दो व्यक्ति उसे देखकर ठिठक गये। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा, दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सर्दी गहरी हो रही थी और कपड़े कम थे। वह तेजी से आगे बढ़ गया। वह जल्दी-से-जल्दी कॉलेज-कैम्प में पहुंच जाना चाहता था। उन दो व्यक्तियों में से एक ने, जिसने उसे पहचाना था, दूसरे से कहा-मैं इसको जानता हूं।

कौन है?

हिन्दू।

साथी अचकचाया, हिन्दू!

हां, हिन्दू। लाहौर का एक मशहूर वकील...।

और कहते-कहते उसने ओवरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल लिया। वह आगे बढ़ा। उसने कहा, जरूर यह मुखबिरी करने आया है।

उसके बाद गोली चली। एक हल्की-सी हलचल, एक साधारण-सी खटपट। एक व्यक्ति चलता-चलता लड़खड़ाया और गिर पड़ा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परन्तु जो अनेक व्यक्ति कुतूहलवश उस पर झुक आये थे, उनमें से एक ने उसे पहचान लिया। वह हतप्रभ रह गया और यन्त्रवत् पुकार उठा मिस्टर पुरी! तुम यहां कैसे...!

मिस्टर पुरी ने आंखें खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया मंडरा रही थी। उन्होंने पुकारने वाले को देखा और पहचान लिया। धीरे से कहा, हसन...!

आंखें फिर मिच गयीं। बदहवास हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा, जल्दी करो। टैक्सी लाओ। मेयो अस्पताल चलना है। अभी...

भीड़ बढ़ती जा रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड सबने घेर लिया। हसन, जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रतिद्वन्दी बनकर अनेक मुकदमे लड़े थे, वह अब उसे भीगी-भीगी आंखों से देख रहा था। एक बार झुककर उसने फिर कहा, तुम यहां इस तरह क्यों आये, मिस्टर पुरी?

मिस्टर पुरी ने इस बार प्रयत्न करके आंखें खोलीं और वे फुसफसाये, मैं यहां क्यों आया? मैं यहां से जा ही कहां सकता हूं? यह मेरा वतन है, हसन ! मेरा वतन...!

फिर उसकी यातना का अन्त हो गया।

-समाप्त

• शायरी...

ग़मों से बशर को रिहा देखना
सुलगती कोई जब चिता देखना
गुज़रना अक़ीदत से कुछ इस तरह
के पत्थर में अपना खुदा देखना

◆ ◆ ◆

ये करना दुआ के लगे ना नज़र
शजर जब कोई तुम हरा देखना
न हो मुतमइन सौंप कर कश्तियां
डुबा दे न ये नाख़ुदा देखना

◆ ◆ ◆

बुलंदी पे खुद को भी पाना कभी
समय की बदलती अदा देखना
है मुमकिन नतीजा जुदाई भी हो
मगर इश्क़ की इब्तेदा देखना

◆ ◆ ◆

न जाने घड़ी कौन हो आखरी
हुए फ़र्ज़ सारे अदा देखना
रवायत निहायत है दुश्वार ये
यूं बेटी की घर से विदा देखना

-विकास जोशी

• इस उसके असर में रहे...

इस उसके असर में रहे
हम फंसे भंवर में रहे
हाथ में उठाते पत्थर कैसे
उम्र भर कांच–घर में रहे
पहुंच कर भी नहीं पहुंचे कहीं
यूं तो रोज़ सफ़र में रहे
झूठी नामवरी के लिए उलझे
बे–परों की ख़बर में रहे
काम एक भी न कर पाए ढंग का
खोए बस अगर–मगर में रहे

–इसाक अश्क